RP638

नारियल एवं सुपारी के प्रमुख रोग तथा उनका नियंत्रण

नारियल एवं सुपारी की खेती भारत में मुख्यतया केरल, तमिलनाडु, कर्नाटक, आंध्र प्रदेश, महाराष्ट्र, गुजरात, असम, पश्चिम बंगाल एवं उड़ीसा आदि राज्यों में की जाती है।

नारियल के उत्पादन एवं क्षेत्रफल की दृष्टि से विश्व में भारत का तीसरा स्थान है। यहां 688.72 करोड़ नारियल 11.9 लाख हैक्टर क्षेत्र में उत्पादित होता है। भारत में प्रति हैक्टेर पैदावार, 5774 नारियल ही है, जो कि उसकी उत्पादक क्षमता से काफी कम है। भारत में सुपारी की खेती 1.87 लाख हैक्टर में की जाती है और 1.92 लाख टन सुपारी पैदा की जाती है। तथा इसकी पैदावार प्रति हैक्टर 1028.3 कि.ग्रा है यह कहना अतिशयोक्तिपूर्ण न होगा कि हम पिछले डेढ़ दशक से अपनी आवश्यकताओं की पूर्ति हेतु आत्म-निर्भर हो गये हैं, परन्तु बढ़ती मांग को देखते हुए अनुमान है कि शताब्दी के अन्त तक सुपारी की मांग लगभग 2.9 लाख टन हो जायेगी। अतः दोनों ही फसलों का उत्पादन व उत्पादकता बढ़ाने हेतु सम्भव प्रयास करना अति आवश्यक है।

नारियल एवं सुपारी की उत्पादकता कम करने वाले प्रमुख कारकों में से रोग

भी एक हैं। अतः इनके सामयिक नियंत्रणपर विशेष ध्यान देना चाहिए।

नारियल एवं सुपारी की फसलों में पाये जाने वाले कुछ समान रोग

1. कली सड़न

यह रोग फाइटोफ्थोरा नामक कवक की विशिष्ट जाति द्वारा होता है तथा सभी जगहों में पाया जाता है, जहां किये फसलें होती हैं। यह रोग सभी आयु के वृक्षों में फैलता है किन्तु नारियल के 25 वर्षों तक के तरुण वृक्षों में अधिक सरलता से फैलता है। वर्षा ऋतु में कम तापमान व अधिक आर्द्रता के कारण रोग अधिक उग्र रूप ले लेता है। यदि रोग को प्रारम्भिक अवस्था में न रोका गया तो वह घातक हो सकता है।

लक्षण

इसकी प्रथम पहचान यह है कि वृक्ष के छत्र के मध्यभाग में निकलती हुई कोमल पत्तियां सूखने लगती हैं। प्रारंभ में ये पत्तियां पीली पड़ती हैं। बाद में गहरे भूरे रंग की होकर अपने आधार भाग से गल कर गिर जाती हैं। कोमल पत्तियों के कर्णाधार व छत्रीय कोमल ऊतक सड़ जाते हैं, अधिक सड़ जाने पर दुर्गन्ध भी निकलने लगती है। यह सड़न बाहर की ओर फैलकर आसपास की पत्तियों के आधार भाग में पहुंच जाती है जिससे वे पीली पड़ती हैं और झुक जाती हैं। अन्दर की तरफ भी सड़न बढ़ती है और कली सड़ जाती है तथा वृक्ष की वृद्धि रुक जाती है।

नियन्त्रण

रोग की प्रारम्भिक अवस्था में ही रोगी वृक्ष के संक्रमित भाग को निकाल

कर एवं पूर्ण सफाई करके चूर्ण कवक्न लेई लगाने के तदुपरान्त उसे ढक कर रखना चाहिए, जब तक कि नयी कोपलें न निकल आयें। यदि रोग घातक हो गया हो तो सम्पूर्ण वृक्ष को काट कर जला देना चाहिए। रोग निरोधी उपाय के अन्तर्गत उन सभी स्वस्थ वृक्षों पर एक प्रतिशत चूर्ण कवक्न मिश्रण का छिड़काव करना चाहिए जो कि रोगी वृक्ष के आस-पास हों।

2. फल सड़न अथवा महाली रोग

इसे कोल रोग के नाम से भी जाना जाता है। यह फाइटोफ्थोरा नामक कवक की विशिष्ट जाति द्वारा फैलता है तथा नारियल की अपेक्षा सुपारी में यह रोग अधिक पाया जाता है। अधिक आर्द्रता तथा वर्षा व तेज धूप के क्रमीय दौर में इस रोग का प्रकोप भयंकर हो जाता है।

लक्षण

रोग ग्रसित वृक्षों से कच्चे व अपरिपक्व सभी प्रकार के फल बड़ी मात्रा में गिरने लगते हैं। सर्वप्रथम फलों के दलपुंज के स्थान से बाहरी सतह पर जल अवशोषित धब्बे से बनते हैं, जोकि बाद में फैलकर सम्पूर्ण फल को ढक लेते हैं और सड़न पैदा करते हैं। इससे गिरी बिल्कुल सड़ जाती है। कभी-कभी पुष्प वृन्तों तथा फलों की डंठले भी इससे प्रभावित होती हैं। नारियल में गहरे भूरे रंग की सड़न होती है और उस भाग पर सफेद जाला सा होता है जबकि सुपारी

नारियल का छत्र श्वासावरोक रोग

में सड़न के साथ-साथ फलों पर गहरा हरा रंग सा दिखाई देता है।

नियंत्रण

इस रोग का नियंत्रण एक प्रतिशत चूर्ण कवक्न मिश्रण का छिड़काव दो बार करके किया जा सकता है, पहला छिड़काव वर्षाऋतु से पहले तथा दूसरा प्रथम छिड़काव के 40-45 दिन पश्चात करना चाहिए। यदि वर्षा की अवधि बढ़ जाय तो तीसरा छिड़काव भी इसी अन्तराल से कर देना चाहिए। छिड़काव करते समय छत्रक पर भी छिड़काव कर देना चाहिए ताकि साथ ही साथ कली सड़न का भी रोग निरोध हो जाये। गिरे हुए रोगी फलों को एकत्र करके जला देना चाहिए।

3. अनाबे रोग अथवा धड़ या जड़ सड़न/थनजावुर उकठा

यह रोग गैनोडर्मा ल्यूसिडम नामक कवक द्वारा फैलता है। यह रोग कर्नाटक राज्य के मलनाद एवं मैदान के क्षेत्रों में एक समस्या है, परन्तु तमिलनाडु, केरल व अन्य राज्यों में भी कहीं-कहीं पाया जाता है। कन्नड भाषा में इसे अनाबे रोग के नाम से जाना जाता है। तमिलनाडु के थनजावुर जिले में प्रकट होने के कारण इसे थनजावुर उकठा के नाम से जाना जाता है। प्रायः यह देखा गया है कि जहां जल निकास समुचित नहीं होता है, वहां यह रोग अधिकतर पाया जाता है।

लक्षण

ग्रसित वृक्ष की पत्तियां पीली पड़ कर मुर्झाकर झुक जाती हैं। जैसा कि सूखे की स्थिति में होता है। बाद में काफी दिनों तक लटके रहने के उपरान्त गिर जाती हैं।

रोग की विकसित अवस्था में तने के निचले भाग में हरे भूरे रंग के अनियमित धब्बे बन जाते, जिनसे भूरे रंग का तरल पदार्थ निकलता है। जैसे-जैसे संक्रमण बढ़ता जाता है नये-नये धब्बे ऊपर की ओर बनते जाते हैं, अन्ततोगत्वा 1-2 वर्ष में वृक्ष पूर्ण निर्जीव हो जाता है। नारियल में स्कन्ध सड़न भी होती है और वृक्ष मर जाता है। रोगी वृक्ष की जड़ों का रंग भी बदल जाता है और वह कमजोर होकर सड़ जाती हैं। कभी-कभी कवक की बीजाणुधानियां नारंगी रंग की अर्द्धचन्द्राकार छत्रक की तरह भूमि से लगे तने के चारों ओर अथवा ठूंठों के चारों ओर निकल आती हैं।

नियंत्रण

प्रारम्भिक अवस्था में रोग को पहचानना एक कठिन कार्य है। अतः इसके बचाव हेतु बगीचे में जल निकास की उचित व्यवस्था रखें तथा उसमें खरपतवार न उगने दें। बगीचे में आस-पास रोगग्रस्त पौधे जैसे गुलमोहर (सामान्य करन्ज) न उगायें। सिंचाई समुचित करें। पौध स्वच्छता का विशेष ध्यान दें, जैसे ही इस रोग के लक्षण दिखाई दें तुरंत वृक्ष को समूल काट कर जला देना चाहिए तथा कवक फैलाव को रोकने हेतु 2-3 मीटर घेरे के बाहर गहरी खाई खोद कर पृथकता रखनी चाहिए। रोगी वृक्ष के घेरे की भूमि की मिट्टी को 0.3 प्रतिशत केप्टान नामक फफूंदी नाशक दवा से उपचारित करना चाहिए। कार्बनिक व अकार्बनिक खादों की अनुमोदित मात्रा के अतिरिक्त 5 कि.ग्रा./वृक्ष/वर्ष नीम की खली देनी चाहिए।

नारियल के कुछ अन्य रोग

1. जड़ उकठा रोग

अब तक उपलब्ध जानकारी के अनुसार यह रोग माइकोप्लाज्मा सदृश जीव द्वारा फैलता है, क्योंकि यह रोगी वृक्षों के अधोवाही ऊतकों में पाया जाता है। लगभग 100 वर्षों पहले यह रोग प्रकट हुआ था, और आज केरल राज्य के आठ दक्षिणी जिलों में इसका प्रकोप अधिक है। छुटपुट मात्रा में उत्तरी भागों

एवं तमिलनाडु के सीमावर्ती कुछ जिलों में भी पाया जाता है। यह रोग सभी आयु के वृक्षों में तथा हर तरह की मिट्टी में पाया जाता है।

प्रायः इस रोग से ग्रसित वृक्षों में पत्ती सड़न रोग भी पाया जाता है जोकि बाइपोलेरिस हेलोडीज नामक कवक से फैलता है तथा वर्षा ऋतु में इसका प्रकोप अधिक होता है।

लक्षण

साधारणतया पत्तियां पीली पड़ जाती हैं एवं पर्णकों के किनारे सड़न के कारण काले पड़ जाते हैं। पत्तियों के पर्णक असामान्य रूप से पसलीनुमा मुड़ कर लटक जाते हैं, जिसे झूलन कहते हैं। इस रोग से पैदावार काफी कम हो जाती है। इसके कारण कच्चे फल गिरने लगते हैं। पुष्पक्रम में मादा पुष्पों की संख्या कम हो जाने के कारण फल कम मिलते हैं तथा फलों का आकार छोटा हो जाता है। फलों में गिरी काफी पतली हो जाती है, तथा तेल की मात्रा भी कम हो जाती है।

इस रोग से ग्रसित वृक्षों में पत्र सड़न भी पाया जाता है जिससे नई कोमल पत्तियों में लाल भूरे रंग के धब्बे पड़ जाते हैं जिनके ऊपरी भाग काले एवं सिकुड़े हुए दिखाई देते हैं। रोग जनित पत्तियां सूखकर हवा के झोकों से फट कर पंखे जैसी हो जाती हैं। साधारणतः इस रोग से वृक्ष मरते नहीं हैं। क्योंकि रोग धीरे-धीरे फैलता है किंतु पत्तियों के अधिकांश भाग के सड़ जाने से पैदावार में अत्यधिक कमी हो जाती है।

नियंत्रण

रोग को कुछ सीमा तक कम करने हेतु निम्न उपाय अपनाने चाहिए :

1—अधिक रोगी एवं अनुत्पादक (10 काष्टफल प्रतिवर्ष प्रतिवृक्ष) वृक्षों को समूल निकाल कर जला देना चाहिए तथा चौथट ड्वार्फ ग्रोरेंज × वेस्ट कोस्ट टाल संकर अथवा वेस्ट कोस्ट टाल की पौध की रोपाई फिर से करनी चाहिए।

2—अनुमोदित नाइट्रोजन, फास्फोरस, एवं पोटाश खाद की मात्रा के अतिरिक्त मैग्नीशियम सल्फेट 1 कि.ग्रा./वृक्ष/वर्ष डालना चाहिये तथा जैविक खाद भी डालनी चाहिए।

3—ग्रीष्म ऋतु में सिंचाई करनी चाहिए।

4—प्रायः रोगी वृक्षों में पत्र सड़न भी पाया जाता है। अतः इसके बचाव हेतु रोगी पत्तियों को निकाल कर, त्रैमासिक अन्तराल से एक-एक करके निम्न दवाओं चूर्ण कवच मिश्रण 1 प्रतिशत, डाइथेन एम 45 0.3 प्रतिशत, एवं फाइटोलान 0.5 प्रतिशत के क्रमिक छिड़काव में रोग को काफी हद तक रोका जा सकता है।

2. तना रिसाव

यह रोग थाइलावायोप्सिस पैराडॉक्सा नामक कवक द्वारा फैलता है और प्रायः सभी जगहों पर पाया जाता है, जहां कि नारियल की फसल होती है।

लक्षण

प्राय: तने के निचले भाग में दरारें उत्पन्न होती हैं जिनसे गहरे भूरे रंग का तरल पदार्थ निकलता है। यह पदार्थ सूख कर काला पड़ जाता है। रिसाव के स्थान पर छाल के नीचे ऊतक सड़ने लगते हैं। धीरे-धीरे रोग तने के अधिकांश भाग में फैल जाता है, जो कि वृक्ष के लिये घातक हो जाता है और वृक्ष सूख जाता है।

नियंत्रण

तेजधार वाले औजार से रोग ग्रस्त भाग को भली-भांति काटकर फेंक देना चाहिए और कटे भाग अथवा घाव को वरम तारकोल या चूर्ण कवक्न लेई से भर देना चाहिए। जल निकास का समुचित प्रबन्ध रखना चाहिये। ग्रीष्म ऋतु में सिंचाई करनी चाहिए, कार्बनिक व आकार्बनिक उर्वरकों के साथ-साथ 5 कि. ग्रा. नीम की खली प्रति वृक्ष प्रतिवर्ष देनी चाहिए। इस प्रकार वृक्ष को अनुकूल वातावरण देकर इस रोग से बचाया जा सकता है।

3. आन्ध्र प्रदेश का टटीपका रोग

यह रोग सर्वप्रथम गोदावरी जिले के पूर्वी भाग में टटीपका गांव में 1949 के तूफान के बाद उत्पन्न हुआ था इसी कारण इसे टटीपका रोग के नाम से जाना जाता है। यह रोग 25-62 वर्ष तक के वृक्षों में अधिक होता है।

सर्वप्रथम छत्र असामान्य रूप से बड़ा हो जाता है और अन्दर की पत्तियां गहरे रंग की हो जाती हैं तथा रोग की प्रारम्भिक अवस्था में पैदावार कुछ अधिक होती है। नयी उत्पन्न होने वाली पत्तियां क्रम से छोटी उत्पन्न होती जाती हैं और बाद में छत्र छोटा हो जाता है। तना शक्वाकार नुकीला होता जाता है। पर्णक के अनियमित रूप से खुलने के कारण पत्तियां दुष्ग्रथित सी दिखाई देती हैं। रोगी वृक्ष बहुत छोटे गुच्छों में अपुष्टितीय बन्ध्य काष्ठफल उत्पन्न करता है।

4. छत्र श्वासावरोध रोग

यह रोग मुख्यतया असम, पश्चिमी बंगाल में पाया जाता है परन्तु छुटपुट अवस्था में दक्षिणी प्रदेशों में भी पाया जाता है। यह रोग प्राय: 3-6 वर्षीय वृक्षों में अधिक फैलता है।

सर्वप्रथम पत्तियां छोटी व विकृतीय निकलना शुरू होती हैं और उनके पर्णक वलयाकार होते हैं एवं पर्णकों के शिरे काले पड़ जाते हैं। ग्रसित वृक्ष के पर्णक खुलने से पूर्व ही श्वासावरोध लक्षण स्पष्ट हो जाता है। जैसे-जैसे रोग बढ़ता जाता है पर्णवृन्त बिना पर्णकों के काले-काले छड़ी नुमा दिखते हैं। छत्र की बाह्य घेरे की पत्तियां हरी व स्वस्थ दिखती हैं। विकसित अवस्था में आद्य ऊतक सड़ने लगते हैं और छत्र निर्जीव हो जाता है। रोगग्रसित वृक्ष 3-4 वर्षों में सूख जाता है। ऐसा पाया गया है कि 20 ग्रा. सुहागा प्रति वृक्ष प्रति वर्ष डालकर रोग को दूर किया जा सकता है।

5. पत्ती झुलसा रोग

यह रोग पेस्टेलोटिया पाल्मेरम नामक कवक से होता है और प्राय: उन सभी

राज्यों में पाया जाता है जहां कि नारियल की खेती होती है। इस रोग में छत्र की पुरानी बाहरी पत्तियों में छोटे धब्बे पड़ जाते हैं जो कि बाद में भूरे रंग के गोलों में घिर जाते हैं। यह धब्बे आपस में मिलकर अनियमित आकार के हो जाते हैं, और काले-काले धब्बों में बदल जाते हैं। अधिक उग्र अवस्था में पर्ण-फलक सूखकर सिकुड़ जाते हैं।

पुरानी रोगी पत्तियों को निकाल कर 1 प्रतिशत चूर्णकवक्ष मिश्रण के छिड़काव से इस रोग का नियंत्रण किया जा सकता है।

सुपारी के कुछ अन्य रोग

1. पत्ती का पीत रोग

उपलब्ध जानकारी के अनुसार ऐसा प्रतीत होता है कि यह रोग माइकोप्लाजमा सदृश जीव द्वारा होता है। यह रोग दक्षिणी केरल, समुद्र तटीय महाराष्ट्र, कर्नाटक के कुछ अन्दर के भाग तथा तमिलनाडु के कुछ भागों में पाया जाता है।

लक्षण

सर्वप्रथम रोग के लक्षण पत्तियों की बाहरी सतह से पीलेपन से प्रारम्भ होकर बढ़ते-बढ़ते पत्ती के अन्दर के भाग में पहुंच कर हरी-हरी धारियों से प्रकट होता है। ग्रसित पत्तियां छोटी, बड़ी व नुकीली हो जाती हैं, तथा वृक्ष का छत्र छोटा हो जाता है और उपज कम हो जाती है। रोगी वृक्ष के काष्ठफल अन्दर से भूरे हो जाते हैं, जिनका खाने में प्रयोग नहीं किया जा सकता। जड़ों के शीर्ष भंगुरीय हो जाते हैं एवं काले पड़ कर धीरे-धीरे सड़ जाते हैं।

नियंत्रण

रोग को कुछ सीमा तक कम करने हेतु निम्न उपाय अपनाने चाहिए :—

1—उर्वरकों का प्रयोग बराबर निम्न दर से करना चाहिए। 100 ग्राम नाइट्रोजन, 160 ग्राम फास्फोरस तथा 140 ग्राम पोटाश प्रति वृक्ष प्रतिवर्ष डालना चाहिए।

2—हरी पत्तियां 12 कि. ग्रा. और कम्पोस्ट 25 कि.ग्रा. का प्रयोग प्रति वृक्ष प्रतिवर्ष की दर से करना चाहिए।

3—1 कि. ग्रा. चूना प्रति वृक्ष प्रतिवर्ष की दर से देना चाहिए।

4—ग्रीष्म ऋतु में 4 दिन के अन्तर से सिंचाई करनी चाहिए।

5—समुचित कीट नाशक दवाओं का छिड़काव विभिन्न कीड़ों के लिए करना चाहिए।

6—जल निकास की व्यवस्था अच्छी रखनी चाहिए तथा बीच के स्थान में लोबिया या अन्य छांदन सस्य बोना चाहिए।

7—रोग फैलाव कम करने के लिए रोगी वृक्ष को काट कर निकाल देना चाहिए।

2. पुष्पक्रम का उल्टा सूखा रोग व छोटे काष्ठफलों का झड़न रोग

यह रोग गर्मी के दिनों में केरल व कर्नाटक में पाया जाता है। या

कोलेटोट्राइकम ग्लीओस्पोरिआॅयडीज नामक कवक के द्वारा होता है। पुष्प क्रम के अनेक डंठल शीर्ष भाग से नीचे की ओर पीले पड़ कर सूखने लगते हैं और धीरे-धीरे मादा पुष्प तथा छोटे काष्ठफल झड़ने लगते हैं।

रोग का उपचार डाइथेन जेड 78 या डाइथेन एम-45 का 4 ग्रा. प्रति लीटर पानी की दर से दो बार छिड़काव करके किया जा सकता है। प्रथम छिड़काव मादा फूल के खिलने पर तथा इसके 20-25 दिन पश्चात दूसरा छिड़काव करना चाहिए। रोगी पुष्पक्रमों को निकाल कर जला देना चाहिए।

3. बंद रोग

कर्नाटक में इस रोग को 'हिडि-मुन्डिगे' नाम से तथा महाराष्ट्र में बँदरोग नाम से जाना जाता है। यह रोग महाराष्ट्र के रत्नगिरी व कोलाबा जिलों में पाया जाता है। इस रोग से पत्तियां छोटी व झुर्रीदार तथा गहरे रंग की हो जाती हैं। तने पतले तथा पर्वसन्धियां छोटी हो जाती हैं। अधिक विकसित अवस्था में रोगी वृक्ष के छत्र गुच्छेदार हो जाते हैं। पुष्पक्रम बहुत छोटे उत्पन्न होते हैं और विकृत हो जाते हैं। उपज में भारी कमी हो जाती है।

अभी तक यह पता नहीं चल पाया है कि यह रोग किस जीव से अथवा कैसे उत्पन्न होता है, फिर भी हम इसे निम्न उपायों से कुछ सीमा तक कम कर सकते हैं। जल-निकास व हवा का प्रबन्ध समुचित करना चाहिए। 1:1 के अनुपात से बने चूने व तूतिया के मिश्रण को 225 ग्रा. प्रति वृक्ष प्रति वर्ष देने से रोगी वृक्ष की दशा सुधारी जा सकती है।

4. काष्ठफल फटन रोग

प्राय: यह शारीरिक कारणों से होता है। जब काष्ठफल का आधा या तीन चौथाई भाग पकता है तो यह पीले पड़ जाते हैं तथा काष्ठफल एक विशेष प्रकार से फटने लगते हैं। यह फटन अंकुड़ी या दलपुंज के पास से या निचले सिरे से प्रारम्भ होती है या दोनों तरफ से होती है। कभी-कभी गिरी में भी फटन होती है।

अधिक जल स्तर वाले स्थानों में जल निकास समुचित कर देने से यह रोग काफी कम किया जा सकता है। रोग की प्रारम्भिक अवस्था में सुहागा का छिड़काव 2 ग्रा. लीटर पानी से करने से रोग कुछ सीमा तक नियंत्रित किया जा सकता है।

उपर्युक्त विधियों से रोग नियंत्रण कर कृषक अधिक उत्पादन करके अधिक आय प्राप्त कर सकते हैं।

सार लेखक : अवधेश कुमार शुक्ल
के.के.एन, नाम्ब्रियार